**International Journal of Humanities and Social Science Research**
**ISSN: 2455-2070**
**www.socialresearchjournals.com**
**Volume 2; Issue 1; January 2016; Page No. 56-57**

# श्री निम्बार्काचार्य जी द्वारा प्रतिपादित द्वैताद्वैत वेदान्त

**डॉ0 अखिल सिंह**

सहायक महाप्रबंधक – प्रशासन, विक्रांत सैफ गार्ड इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नौएडा, उत्तर प्रदेश, भारत।

## प्रस्तावना

श्री निम्बार्काचार्य जी का जन्म 11 वीं शताब्दी[1] में श्री रामानुजाचार्य जी के पश्चात् एवम् श्री मध्वाचार्य जी से पूर्व हुआ। श्री निम्बार्काचार्य वैष्णव मतावलम्बी तैलगू ब्राह्मण थे। ब्रह्मसूत्रों पर इन्होंने जो भाष्य किया है वह ''वेदान्तपारिजात सौरभ भाष्य'' के नाम से प्रसिद्ध है। यह भाष्य परिणामवाद का पोषक है।

'सिद्धान्तजाह्वी' (प्रथम श्लोक) के अनुसार इनका असली नाम नियमानन्द था, निम्ब के वृक्ष पर अर्क (सूर्य) का रात के समय साक्षात् दर्शन कराने के कारण इनका नाम निम्बार्क या निम्बादित्य पड़ा।[2] इनके प्रधान ग्रंथ निम्नलिखित हैं:–

1. वेदान्तपारिजात–सौरभ (ब्रह्मसूत्र का नितान्त स्वल्पकाय भाष्य)
2. दशश्लोकी (सिद्धान्तप्रतिपादक दश श्लोको का संग्रह, जिस पर हरिव्यास आचार्य की टीका प्राचीन तथा महत्वशालिनी मानी जाती है।)
3. श्री कृष्णस्तवराज (निम्बार्क–तत्व–प्रकाशक पच्चीस श्लोकों का है, जिसकी श्रुत्यन्तसुरद्रुम, श्रुतिसिद्धान्तमंजरी तथा श्रुत्यन्तकल्पवल्ली नामक विस्तृत व्याख्यायें प्रकाशित हुई हैं।)

अप्रकाशित ग्रन्थों में मध्वमुख–मर्दन, वेदान्त–तत्त्वबोध, वेदान्त सिद्धान्त प्रदीप, श्रीकृष्णस्तव मुख्य है।

निम्बार्क का सिद्धान्त द्वैताद्वैत के नाम से विश्व विख्यात है। जिसका अर्थ है जीव और जगत् में परब्रह्म से भेद भी है और अभेद भी। इन दोनों से ब्रह्म पृथक् भी है और अपृथक् भी पृथक् इस रूप में है कि जीव अल्पज्ञ और दुःखी है। जगत् जड़ है किन्तु ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और चेतन है। वही इन दोनों का नियामक है। अपृथक वह इसलिए माना जाता है क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक है। उसको छोड़कर जीव और जगत् कहीं जा नहीं सकते। सबके साथ परमेश्वर सदा सम्पृक्त रहता है। जीव भोक्ता है, जगत् भोग्य और ईश्वर नियन्ता है। यही तीन सत्ताएँ चार रूपों में परिवर्तित होती हैं:–

(1) जगत् (2) जीव
(3) ईश्वर (4) अक्षर ब्रह्म

जीवदृष्टा है, जगत् दृश्य सत्ता है, ईश्वर इन दोनों का नियामक है। इन तीनों से भी ऊपर एक तुरीय सत्ता है, जो नाम और रूप से रहित है, सनातन है, निर्विकार है। आपार रूप से जगत् जड़ प्रतीत होता है किन्तु व्यापक ईश्वर की सत्ता से अधिष्ठित होने के कारण यह भी चेतन हो जाता है। इस प्रकार द्वैत और अद्वैत दोनों यथार्थ है।

द्वैताद्वैत के समर्थक आचार्य निम्बार्क के अनुसार ईश्वर तथा जीव एवं जगत् में अभेद भी है और भेद भी है। इस प्रकार निम्बार्क दर्शन में जीव एवं जगत् के आश्रितत्वादि स्वभाव एवम् अचेतनत्वादि विशेषणों के ईश्वर के आश्रयत्वादि स्वभाव एवम् कल्याण विशेषणों से विरूद्ध होने के कारण ईश्वर और जीव एवं जगत् में भेद स्पष्ट ही है। परन्तु जीव तथा जगत् की सत्ता आश्रयरूप ईश्वर के बिना असम्भव है। अतः ईश्वर तथा जीव एवं जगत् में अभेद भी है।[3]

द्वैताद्वैतवादी निम्बार्क दर्शन के अंतर्गत अद्वैत वेदान्त के निर्गुण ब्रह्म के विरुद्ध सगुण ब्रह्म की सर्वोच्च सत्ता स्वीकार की गयी है। निम्बार्क ने अपने ब्रह्म को समस्त दोषों से रहित एवं अशेष कल्याण गुणों से सम्पन्न कहा है।[4] इसके अतिरिक्त परमात्मा समस्त अर्न्तजगत् एवं बर्हिजगत् में व्याप्त होकर स्थित है।[5] जीव और जगत् की सत्ता स्वतंत्र न होकर ईश्वराधीन है, इसलिए ईश्वर उनका नियन्ता कहलाता है।[6] प्रलयकाल में जीव एवं जगत् ईश्वर में लीन हो जाते हैं। प्रलय एवं सृष्टि के निर्माण काल के बीच जीव एवं जगत् सूक्ष्म रूप से ईश्वर में ही स्थित रहते हैं। सर्वशक्तिमान् होने के कारण ईश्वर अपनी इच्छामात्र से ही समस्त संसार की सृष्टि करने में समर्थ होता है।[7]

इनके मत में जीवात्मा ज्ञान स्वरूप भी हैं और ज्ञाता भी, जिस प्रकार सूर्य प्रकाश भी है और प्रकाशक भी है। जीव का अपने गुणों के साथ वही सम्बन्ध है जो धर्म का धर्मी के साथ है। धर्म और धर्मी में भेद भी है और अभेद भी है।

धर्म और धर्मी का पूर्णतया न तो एकत्व है और न ही उसका पूर्णतया पृथक्त्व है। इसी प्रकार ब्रह्म और जीव का परस्पर सम्बन्ध है। जीव ब्रह्म से भिन्न है और अभिन्न भी है। भिन्न इसलिए है क्योंकि वह अल्पज्ञ है, अणुपरिणाम वाला है और शरीर द्वारा सुख दुःख अनुभव करता है, परन्तु ईश्वर सर्वज्ञ है, विभु है और आनन्दस्वरूप है। अभिन्न इसलिए है क्योंकि उसको प्रकाश तथा जीवन ईश्वर से मिलता है और ईश्वर के अधीन रहकर ही वह नियन्त्रित किया जाता है। जीवात्मा का परमात्मा के साथ वही सम्बन्ध है जो सूर्य का अपनी किरणों के साथ है। किरणें सूर्य से भिन्न भी है और अभिन्न भी।

आचार्य निम्बार्क जीव को अणु मानते हैं।[8] प्रत्येक प्राणी में जीव भिन्न है और इसी से सुख–दुःख के वैचित्र्य का समाधान हो सकता है। यह अनन्त और गुणमयी माया से बद्ध है। यह ज्ञान का आश्रय और ज्ञानस्वरूप भी है इसलिए इन्द्रियों के बिना भी जीव में ज्ञान रहता है।[9]

जीव दृष्टा, भोक्ता, कर्त्ता और श्रोता सभी है। यह अणु होने पर भी समस्त शरीर के सुख–दुःख का अनुभव करता है। इसी से समस्त शरीर में प्रकाश भी है। जीव स्वतन्त्र नहीं है। यह अपने ज्ञान, कर्म, मोक्ष तथा बंधन सबके निमित्त 'ईश्वर' पर निर्भर है। परमात्मा की कृपा से सज्जन लोग जीवात्मा का भी ज्ञान प्राप्त करते है[10] यह आनन्दमय नहीं हो सकता। अपने किए हुए कर्म का भोग यह स्वयं करता है। यह नित्य भी है।

जीव के बद्ध और मुक्त दो भेद हैं। अनादि कर्म और वासना के फलस्वरूप देव, मनुष्य तथा तिर्यक् आदि का शरीर धारण कर उसमें आत्मा या आत्मीय वस्तु का जो दृढ़ अभिमान रखते हैं, वही 'बद्ध है। ये जीव वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए मरने के बाद

अपने क्रमानुसार फल का भोग कर अवशिष्ट भोग के लिए पुनः जन्म ग्रहण करते हैं। एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने के समय जीव सूक्ष्म भूतों से युक्त रहते हैं।

मुक्त जीव को शरीर धारण करना आवश्यक नहीं है। नित्य मुक्त जीव के अन्तर्गत गरूड़, विष्वक्सेन तथा भगवान् के विविध आभूषण और वंशी आदि आते हैं। दूसरे प्रकार के मुक्त जीव भोग करते हैं। स्वप्न के समान भगवत् सृष्टि शरीर आदि के द्वारा, कदाचित् भगवान् की लीला के अनुसार केवल संकल्पमात्र से ही शरीर उत्पन्न कर मुक्त जीव भोग प्राप्त करते हैं।[11] इनका ऐश्वर्य, जगत् के व्यापार से शून्य है। यह जगत् मिथ्या नहीं है क्योंकि यह परमात्मा की शक्ति का विकास है।

श्री शंकराचार्य जी के मायावाद का तीव्र खण्डन आचार्य निम्बार्क के द्वारा किया गया है। ईश्वर और जगत् न तो एक दूसरे सर्वथा भिन्न है और न ही सर्वथा अभिन्न है। यदि उनको भिन्न मानें तब ईश्वर को परिमित समझना होगा, उनकी सर्वव्यापकता पर आक्षेप होगा, और उनको एकदेशीय समझा जायेगा। उस अवस्था में वह सृष्टि का नियन्ता न कहला सकेगा। यदि यह कहा जाए कि ईश्वर और जगत् अभिन्न है और भेद उपाधि के कारण है तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा करने से ब्रह्म को अवस्थाओं के आधीन होना पड़ेगा और त्रुटियुक्त होना भी उसके लिए सम्भव हो जायेगा। इसलिए श्री निम्बार्काचार्य जी ने दो सत्ताएँ मानी हैं कि भेद भी है और अभेद भी। इसी को इनका भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैत सिद्धान्त कहते हैं।

इसी को इनका भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैत सिद्धान्त कहते हैं।

इस जड़ जगत् में तीन मुख्य तत्व हैं, जोकि निम्नलिखित है[12]:–

1. अप्राकृत अर्थात् शुद्ध सत्व जो ईश्वर की नित्य विभूति है।
2. प्रकृति, जो सत्, रज, तम इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम है।
3. काल, जो समय का वाचक है।

ये तीनों ही ईश्वर के अधीन हैं। ईश्वर सगुण एवं सर्वगुणसम्पन्न है। उसके चार व्यूह हैं। अवतारों के रूप में वह अपने आपको प्रकट करता है। कृष्णभगवान ही ब्रह्म रूप हैं। वे ही इस सृष्टि के उपादान और निमित्त कारण हैं। वे उपादान कारण इसलिए हैं क्योंकि उनके द्वारा ही संसार में चेतन और अचेतन शक्तियों का विकास हुआ है साथ ही वे निमित्त कारण भी इसलिए हैं क्योंकि वे प्रत्येक जीव को कर्मानुसार फल देते हैं। ईश्वर की भक्ति का अर्थ प्रेम तथा आत्मसर्मपण है, उपासन नही। केवल ईश्वर की कृपा तथा अनुग्रह से ही मोक्ष मिल सकता है।

निम्बार्क के अनुसार मुक्ति का अर्थ ब्रह्मलोक की प्राप्ति है। मुक्ति का एक मात्र साधन भक्ति है। भक्ति का अर्थ है– शरणागति या पराप्रपति। परा–प्रपति में भगवान् की अनुकूलता का संकल्प लेना, प्रतिकूलता का वर्जन करना। ''भगवान ही रक्षा करेंगे'' ऐसा विश्वास करना तथा ईश्वर के रक्षकत्व रूप महिमा का वर्णन किया जाता है।[13] निम्बार्क के अनुसार मुक्तावस्था में भी जीव के कर्तव्य में बाधा नहीं पड़ती।[14] यही कारण है कि मुक्तावस्था में भी जीव के द्वारा उपासना का विधान बतलाया गया है। भगवान् भक्त के कापर्ण्यभाव से प्रसन्न होते हैं। प्रसन्न हुए भगवान् भक्त को स्वकीय धाम प्रदान करते हैं।

## सन्दर्भ सूची


1. छान्दोग्योपनिषद् – एक अध्ययन, मनुदेव, पृष्ठ–23
2. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय पृष्ठ–407
3. छान्दोग्योपनिषद्– एक अध्ययन, मनुदेव पृष्ठ–53
4. दशश्लोकी–4
5. यत् कञ्चिच्जगत्यास्मिन् दृश्यते श्रूपतेऽयिवा। अन्तर्षहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः।। सिद्धान्तजाह्नवी पृष्ठ–53
6. दशश्लोकी–7
7. ब्रह्मसूत्र, निम्बार्क भाष्य 1/1/19
8. वेदान्तपारिजात सौरभ 2/3/19, 22
9. सकलाचार्यमत संग्रह पृष्ठ 9–13
10. वेदान्तपारिजात सौरभ 2/3/23–25
11. वेदान्तपारिजात सौरभ 4/4/13–15
12. वेदान्त विज्ञान, गोपाल पृष्ठ–63
13. कर्ता शास्त्रार्थत्वात्। वेदान्त पारिजात सौरभ, ब्रह्मसूत्र 2/3/32
14. मुक्तिर्हित्वाऽन्यथाभावं स्वरूपेण व्यवस्थितिः। श्रीमद्भागवतपुराण